International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 20-04-2019; Accepted: 23-05-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 4; July 2019; Page No. 38-39

लोकनाट्य परम्पराओं की सार्थकता

शहजाद आलम
Ph.D. Award, Department of Hindi, Jawaharlal Nehru University, Delhi, India

प्रस्तावना

लोकनाट्य समस्त लोकोंमुखी विधाओं में अपना विशेष स्थान रखता है। यह लोक अभिनय कला का जीवंत भाष्य है। इसमें लोक के सुख–दुख की अभिव्यक्ति होती है। इसमे लोक जीवन की सम्पूर्ण रंगधर्मी संकल्पना विद्यमान है। लोकनाट्य लोकसाहित्य की ऐसी विधा है जिसमें समस्त लोक की जीवन शैली प्रतिबिंबित होती है। लोकनाट्य में आनंद एवं उल्लास के अवसरों पर लोक की सामूहिक अभिव्यक्ति होती है। मनोरंजन के लिए सामूहिक अभिव्यक्ति ही लोकनाट्यो का आधार है। इसमें सामूहिक प्रेरणाओं से निर्मित विभिन्न गीत, नृत्य, कथाएँ, अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत किए जाते हैं। इन लोकनाट्यो को बनाने, निर्मित करने तथा समृद्ध करने में लोक तथा समाज की सामूहिक भूमिका होती है। इस सामूहिक अभिव्यक्ति में अभिनेताओं का जितना योगदान होता है उतना ही दर्शकों का भी योगदान होता है। लोकनाट्य में दर्शकों की रुचि को ध्यान में रखकर ही प्रदर्शन होते हैं।

लोकनाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप से है जिसका संबंध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन से है और जो परंपरा से अपने–अपने क्षेत्र के जन–समुदाय के मनोरंजन का साधन रहा है। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार, "लोक नाटक सामूहिक आवश्यकताओं और प्रेरणाओं के कारण निर्मित होने से लोक जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।"1 जनसाधारण द्वारा निर्मित एवं अभिनीत ऐसा नाट्य जो अपनी जन परंपरा से युक्त हो साथ ही अपनी आंचलिक भाषा के साथ विभिन्न स्त्री–पुरुषों द्वारा सरल स्वाभाविकता के साथ बिना आडंबर के सीधे–साधे मंच पर सहज अभिनय के साथ खेला जाए उसे लोकनाट्य कहा जाता है।

लोकनाट्यों में साज–सज्जा प्रसाधन आदि की विशेष व्यवस्था नहीं करनी पड़ती। आंचलिक भाषा में अभिनीत लोक जीवन की झांकी बिना किसी दुराव–छिपाव के प्रदर्शित करना ही लोकनाट्य की पहचान है। डॉ।० श्याम परमार लिखते हैं कि, "लोकनाट्य मनोरंजन का आडम्बरहीन साधन है जो नागरिकों के मंच से अपेक्षाकृत निम्न स्तर का, पर विशालजन के हर्षोल्लास से संबन्धित है। ग्रामीण जनता में इसकी परंपरा युगों से चली आ रही है।"2

इस प्रकार जनसाधारण द्वारा निर्मित नाट्य लोकनाट्य कहलाता है जिसमें लोक जीवन के विविध पक्षों को जैसे सुख–दुख, हर्ष–विषाद, उत्साह–वीरता, करुणा आदि का घटना के माध्यम से मंचन किया जाता है। इस प्रकार लोक जीवन से सीधे जुड़े होने के कारण ये जन साधारण की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं और यही कारण है कि यह जन साधारण को अत्याधिक प्रभावित करते हैं। "इसलिए लोक नाट्य से अभिप्राय उन नाट्य रूपों से है जिसका संबंध सामान्य जन जीवन से होता है और जो लोक रुचि तथा सामान्य जन की धार्मिक सांस्कृतिक व नैतिक मनोवृतियों का प्रतिनिधित्व करता है।"3

लोकनाट्यों का उदय प्रायः कथा गायन से माना जाता है। लोक नाटकों में नृत्य एवं संगीत की प्रधानता रहती है। लोकनाटक अपनी लयात्मकता, संगीत, नृत्य प्रधानता एवं तीखे व्यंग्य के कारण बहुत सम्मोहक होते हैं।

हालांकि लोकनाट्यों की परंपरा भारत में पहले से ही विद्यमान रही है। दशरथ ओझा के अनुसार, "केवल साहित्यिक नाटक जनता के दैनिक जीवन में मनोविनोद के सर्वोच्च साधन किसी युग में भी न बन पाये होंगे। अतएव समान्यतः अपठित तथा अर्धपठित जन समुदाय में उनके जीवन के अनुरूप हास्य–विनोदमय नाटक का सृजन होता चला आया है। इसकी प्रेरणा स्वभावतः जन समुदाय में रहती ही है, यह भी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि साहित्यिक और जन नाटक एक दूसरे पर प्रभाव भी डालते रहे होंगे और इनमें परस्पर आदान–प्रदान निरंतर होता रहा होगा। उदाहरण के लिए जन नाटक का हसौड़ पात्र संस्कृत नाटक में विदूषक के रूप में आ गया। इसी प्रकार रंगमंच आदि साहित्यिक कलाओं का प्रवेश जन नाटकों में होने लगा है। अतः यह निःसंदेह रूप से मानना चाहिए कि भारतीय देशी भाषाओं के साहित्यिक नाटक प्रणयन से पूर्व कोई न कोई नाटक परंपरा प्रत्येक भाषा–भाषी प्रांत में विद्यमान अवश्य रही है, जो संभवतः साहित्यिक नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण न होते हुए भी ज्येष्ठ भगिनी के नाते उसकी परिचर्या अवश्य करती रही होगी।"4 नाट्यशास्त्र के रचीयता भरतमुनि भी शास्त्रीय नाट्यधर्मी प्रवृतियों का विवेचन लोकधर्मी परम्पराओं के आधार पर करते हैं। इस तरह साहित्यिक नाट्य और लोकनाट्य ने एक दूसरे पर प्रभाव डाला है। लोकनाट्य परंपरा के अधिकतर रूप संस्कृत नाट्य रूपों से ही उदभूत होकर विकसित हुए हैं। इसलिए लोकनाट्य और संस्कृत नाट्य रूपों एवं परम्पराओं में रूढ़ियों तथा व्यवहारों में काफी समानता है। गहराई में उतरने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत नाट्य परंपरा ही बाद में लोकनाट्य के विभिन्न रूपों में रूपांतरित होकर जीवित रही। कदाचित यही कारण है कि संस्कृत नाट्य की अनेक रंगमंचीय विशेषताएँ एवं शिल्पगत प्रवृतियां लोकनाट्यो में आज भी हल्के फेर बदल के साथ विद्यमान हैं। क्योंकि लोक नाट्य में लोक से जुडने की प्रवृति अधिक है इसलिए मध्यकाल में संस्कृत रंगमंच के ह्रास के बाद भारत के अलग–अलग प्रदेशों में उन प्रदेशों में आंचलिक चरित्र के अनुरूप अलग–अलग प्रकार के लोकनाट्य विकसित हुए। अपने–अपने समय की प्रचलित घटनाओं, प्रथाओं, चरित्रों को कथ्य के रूप में स्वीकार करने की प्रवृति इन लोक नाटकों का आधार है।

भारतीय नाट्य परंपरा में शुरू से ही लोकनाट्य की विविध परम्पराएँ विकसित और पल्लवित होती रही है जिनमें कई लोकनाट्य परम्पराएँ अब तक जीवित है। समकालीन रंग प्रयोक्ता इनका पुनः संस्कार कर इसकी सप्राण रंगयुक्तियों को अपने अभिप्राय के अनुरूप ढाल रहे हैं। इन प्रयोगों के बल पर समकालीन नाटककारों ने जो लोकप्रियता हासिल की है। उससे इन नाटकों की अनंत शक्ति को समझा जा सकता है। अपने अभिनय में लाउड होने के बावजूद महाराष्ट्र का तमाशा, गुजरात की भवाई, राजस्थान का ख्याल, उत्तर प्रदेश की कृष्णलीला, स्वांग, नौटंकी, मैसूर का यक्षगान, आंध्र की कुचीपुड़ी बराकथा वीथिनाटकम, मद्रास का पागल वेशम अपने–अपने प्रदेश और परिवेश में आज भी प्रासंगिक बने है।

हिन्दी नाटक और रंगमंच के पास अब भी यदि कुछ शेष बचा हुआ है तो वह लोकनाट्य परंपरा का लुप्त होता जा रहा रूप ही है। लोकनाट्य और संस्कृत नाट्य की इस परंपरा में आज भी कुछ ऐसे जीवंत नाटकीय तत्व और लोकतत्व विद्यमान है जिनका यथावत समुचित उपयोग कर हिन्दी के नाट्यकार प्रयोग के रूप में नई सार्थक नाट्य शैली की सृष्टि कर रहे हैं।

लोकनाट्य रूपों से विभिन्न प्रकार के प्रभाव ग्रहण कर आधुनिक हिन्दी नाटककारों ने अपने नाटकों में नई प्रयोगात्मक प्रवृति का विकास किया है और नए नाट्य रूपों की संभावनाओं से साक्षात्कार कर लोक जीवन से जुडने का प्रयास भी किया है।

लोककथाओं का आश्रय लेकर अथवा लोककथाओं से प्रभावित होकर लिखे गए नाटकों में लक्ष्मीनारायण लाल का 'सूखा सरोवर', 'सूर्यमुख', 'कलंकी', एवं 'एक सत्य हरिश्चंद्र', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का 'बकरी', जगदीश चंद्र माथुर का 'कोणार्क', मणि मधुकर का 'रस गंधर्व', 'दुलारीबाई' और 'खेला पोलमपुर', हमीदुल्ला का 'ख्याल भारमली', मृणाल पाण्डे का 'जो राम रचि राखा', असगर वज़ाहत का 'वीरगति', शांता गांधी का 'जसमा ओडन', गोविंद चातक का 'दूर का आकाष्ठा' आदि विशेष उल्लेखनीय है।5

लोकनाट्य अपनी परम्पराओं से जुड़े हुए हैं इसमें जनमानस के सुख–दुख अभिव्यक्ति पाते हैं। इसमें हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं की विरासत मौजूद है यही कारण है कि यह आज भी सार्थक बने हुए हैं। लोकनाट्य हिन्दी नाटक और रंगमंच के पास उसकी एक विरासत है जिसका आधार या आश्रय पाकर हिन्दी नाटक और रंगमंच भी अपने को विकसित और समृद्ध कर सकेगा इसलिए लोकनाट्य को बचाए रखने की ज़िम्मेदारी भी हिन्दी साहित्य और रंगमंच को उठानी होगी तभी दोनों समृद्ध हो सकेंगे और एक दूसरे को जीवित रख अपना विकास कर सकेंगे।

संदर्भ सूची

1. डॉ० संध्या गर्ग, डॉ० संगीता गुप्ता, लोकसाहित्य, श्रुति बुक्स, 2015, पृष्ठ–62
2. डॉ० श्याम परमार, भारतीय लोकसाहित्य, पृष्ठ–173
3. डॉ० अनिरुद्ध कुमार 'सुधांशु', लोकसाहित्य, पृष्ठ–46
4. दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृष्ठ–36
5. डॉ० अनिरुद्ध कुमार 'सुधांशु', लोकसाहित्य, पृष्ठ–46